

शिद

वह मुझे फिर दिखा। उस पर मैं महीने भर से नजर रख रहा था। वह ऐन सुबह कॉलोनी में आ धमकता और टाट के एक बड़े बोरे को अपनी पीठ पर लादे रहता। बोरे में सामान क्या है, यह अब तक मैं नहीं जान पाया हूँ लेकिन इतना जरूर है कि सुबह जब मैं उसे देखता बोरा खाली-खाली-सा होता और जब वह लौटता, बोरे में बहुत कुछ भरा होता। एक-दो बार मैंने चोरी से उसका पीछा भी किया। लेकिन महानगर की भीड़ तो आप जानते ही हैं। बत्ती के लाल होने से थोड़ा पहले वह चौराहे से निकल गया। मैं लाल बत्ती पर लटका रहा। और बत्ती जब हरी हुई, मैंने अपनी गाड़ी दौड़ाई। तब तक वह चौराहे के थोड़ा आगे बाईं सड़क पर मुड़ कर गायब हो चुका था।

मैं उसी सड़क पर मुड़ गया। सड़क क्या थी एक खूबसूरत कॉलोनी के बीच आराम से लेटी हुई एक चौड़ी काली रेखा, जिसके दोनों ओर भव्य कोठियाँ थीं और आगे वह रेखा एक खूबसूरत बगीचे की सीमा को छूती हुई बाएँ-दाएँ दोनों ओर फैल गई थी। मैं यकीनपूर्वक नहीं कह सकता कि यह यहाँ आ कर किसी एक ओर निकल गया था या इससे पहले ही किसी कोठी में छिप गया था।

आप सोच रहे होंगे कि उसे अपनी कोठी में आखिर घुसने कौन देगा? तो यहाँ भी आप गलत हैं। मैं यकीन से कह सकता हूँ कि वह इसी कॉलोनी की किसी कोठी में रहता है। वह घर के पिछवाड़े उछाली या फेंकी गई चीजें उठानेवाला कोई सामान्य आदमी नहीं था, बहुत संभ्रांत-सा था। आँखों पर सुनहरा चश्मा, बाल करीने से बेतरतीब, पैरों में हमेशा चमड़े की चमचमाती काली चप्पल, मानो दुकान से सीधे सड़क पर उतरी हो! वह हमेशा हमारी कॉलोनी में घर के मुख्य द्वार से घुसता।

पिछली बार हमारे पड़ोसी शुक्ला जी की कोठी से जब वह बाहर आया तो मैं तुरंत उनके घर की ओर लपका। शुक्ला जी रिजर्व बैंक में हिंदी अधिकारी हैं। मैंने उनसे अभी-अभी बाहर निकले उस रहस्यात्मक आदमी के बारे में पूछताछ की। पता चला वह यूँ ही आया था। शुक्ला जी कह रहे थे - 'पहले तो मैं उसे नेग्लेक्ट कर रहा था। बट ही वाज रियली अ मिस्ट्री। मैं कन्फर्म हूँ कि वह मुझसे ही बात कर रहा था। लेकिन उसकी बातों में जादू था।' शुक्लाजी ने उनके बारे में जितनी भी बातें बताईं उससे कुछ भी अंदाज नहीं लगता था। मैंने उनसे फिर पूछा - 'उसने घर से कोई चीज तो नहीं उठाई?'

'नहीं... नहीं... एक्चुवली वह तो यहीं पर बैठा था... और...' फिर एक लंबी संभ्रांत बकवास।

आखिरकार बात खत्म करने के लिहाज से मैंने उनसे एक गिलास पानी माँगा। अपने पड़ोसी से इस तरह पानी माँगना मुझे अजीब लग रहा था क्योंकि मेरा घर बंद नहीं था और नहीं कोई ऐसी आपात स्थिति थी। मैं घर जा कर भी पानी पी सकता था लेकिन फिर भी मैंने माँगा।

शुक्लाजी मुझे थोड़ी देर भकुआ कर देखते रहे, फिर पूछा - 'क्या चाहिए?'

'पानी,' मैंने थोड़ा ऊँचा कहा।

'क्या?'

'पानी... पानी...'

मैंने अपने अँगूठे को होंठों के पास ले जा कर पीने का इशारा करते हुए कहा।

'ओ... ड्रिंकिंग वाटर...', उन्होंने अपनी पत्नी को आवाज दे कर वाटर लाने को कहा।

'अंग्रेजी की नाजायज औलाद...' मैंने भुनभुनाते हुए मन में सोचा लेकिन चेहरे पर मुस्कराहट बनाए रखी। एक कुशल पड़ोसी का धर्म निभाते हुए इस घटना को मैं जल्द से जल्द दूसरों को बताना चाहता था। इसलिए पानी पी कर असभ्यता का प्रदर्शन करते हुए हड़बड़ी में वहाँ से भागा।

सबसे पहले तो इस सूचना को जाहिर मैंने अपनी पत्नी पर किया। 'अच्छा...,' उसकी आँखें फैल गईं तो मुझे बड़ा मजा आया। लेकिन अगले ही पल मेरे मजे की ऐसी-तैसी फेरते हुए वह अपनी नई साड़ी को तह करने लगी, जो कि वह पहले से ही कर रही थी।

'मजा नहीं आया...' मैंने अपने आपसे बहुत मायूस हो कर कहा। इस सूचना पर मेरा बस चलता तो शुक्लाजी के घर के सामने ही एक गोष्ठी करवा देता और विषय रखता - 'हिंदी के विकास में हिंदी अधिकारियों का योगदान' और लोगों से कहता कि आप लोग शुक्लाजी से पानी माँगें। पिछले साल 14 सितंबर को एक स्कूल में हिंदी की महता पर भाषण देते हुए शुक्लाजी ने अंग्रेजीवालों को जी भर कर कोसा था और कोसने के लिए जो उदाहरण रखे थे, वो मेरी जिंदगी से लिए गए थे। इसके अलावा उन्होंने हिंदी लेखकों की भी बहुत लानत-मलामत की थी। तब से हमारे बीच एक अधोषित युद्ध छिड़ा हुआ था। यहाँ मैं आपको बता दूँ कि हिंदी के मामूली से मामूली लेखक और हिंदी अधिकारियों के बीच जो साँप-नेवले अपने घर बना लेते हैं, हम दोनों इसके ताजा-तरीन स्थानीय उदाहरण थे। मैं लेखक मामूली जरूर था लेकिन अपने दायित्व को बखूबी समझता था, फिर मैं अपने महकमे का एक साहब भी था। यानी मेरी घंटी पर एक चपरासी की दिनचर्या टिकी थी। ऐसे में शुक्लाजी को मुझ अधिकारी-लेखक से बैर नहीं मोल लेना चाहिए था। अब जबिक मोल ले ही लिया था तो दाम तो चुकाना ही था। लेकिन आप ध्यान में रखें कि यह संभ्रांत मध्यमवर्गीय बैर था। इसमें हँसते हुए और पीठ पीछे छोटे-मोटे वार किए जाते हैं।

अभी सुबह के नौ बजे हैं। ऑफिस के लिए मैं साढ़े नौ बजे से तैयार होता हूँ। इसका मतलब इस सूचना के प्रसारण के लिए मेरे पास आधा घंटा और है। पत्नी से मायूस होते हुए मैंने सोचा और सड़क पर निकल आया।

सुबह की सड़क पर स्कूल के लिए तैयार अपनी गाड़ी का इंतजार करते बच्चे, गाउन पहन कर किसी काम से निकली गृहणियाँ, घर में घुसती अथवा सड़क पर चलती कामवालियाँ और एकाध सब्जीवाले के अतिरिक्त कोई नहीं था। मैं तीन बँगले छोड़ कर गेट पर खड़े कुलकर्णी के गोल-मटोल और बेहद शरारती बच्चे पिंटू के पास पहुँचा, जो शायद ऑटो रिक्शा का इंतजार कर रहा था। वह छठी कक्षा में पढ़ता था और हिंदी निबंध के लिए कभी-कभी मेरे पास आता था।

'पिंटू बेटे, तुम्हें मालूम है कि पानी का मतलब क्या होता है?'

'वॉटर,' उसने कहा और अपने वॉटर बैग से गिरा कर भी दिखाया।

'हमारे पड़ोस में जो शुक्ला अंकल रहते हैं न, उनको नहीं मालूम कि पानी का मतलब क्या होता है। यह बात तुम स्कूल में अपने दोस्तों को बताना। ठीक है!'

'जी अंकल...,' मैं आगे बढ़ गया और किसी हद तक संतुष्ट भी था क्योंकि मुझे पिंटू की काबिलियत पर पूरा भरोसा था। सड़क के अगले मोड़ पर एक सब्जीवाला सब्जियों के नाम चिल्लाते हुए चला जा रहा था। मैंने आवाज दे कर उसे रोका। वह मुझे पहचानता था। सुबह कभी-कभी मैं भी उससे सब्जियाँ खरीदा करता था।

'इहाँ तक क्यूँ चले आए साहब, हम तो उहीं आ रहे थे।'

'लौकी क्या भाव है?' उसके प्रश्न को नजरअंदाज करते हुए मैंने पूछा।

'चार रुपए पाव।'

'सब्जीवाले, क्या तुम्हें मालूम है कि पानी का मतलब क्या होता है?'

'इ का पूछते हो साहब, सुबह से शाम तक सब्जियों पर पानी छींटते-छींटते अँगुलियाँ ससुरी गल जाती हैं। दू सौ मीटर दूर से हैंडपंप से पानी भर कर लाता हूँ तब तो घर में कुछ पकता है। तीन महीना पहिले कारपोरेशन का नल कट गया। मकान मालिक कहता है कि किराया दुगुना नहीं करोगे तो नल का कनेक्शन नहीं जुड़वाऊँगा। पीने का पानी तो इस मुहल्ले से माँग-माँग कर पीता हूँ और घर जाते-जाते एकाध बाल्टी भी जोड़ लेता हूँ...'

'शुक्लाजी को जानते हो, जो हमारे पड़ोस में रहते हैं? उनके घर बहुत पानी है। आज उन्हीं से माँगना।' उसकी पानी संबंधी मुश्किलों से सहानुभूति दिखाने के बजाय मैंने अगला दाँव चला दिया था।

'जी, अबहीं जाके माँग लेते हैं।'

मैं व्यस्तता का दिखावा करते हुए आगे बढ़ गया और मोड़ पर किसी का इंतजार करता हुआ-सा ऐसे खड़ा हो गया कि सब्जीवाला मुझे देख न सके लेकिन मैं उसे देखता रहूँ। वह सीधे शुक्लाजी के घर पहुँच कर उन्हें पुकारा। शुक्लाजी बाहर आए। फिर दोनों में पाँच-सात मिनट तक भिन्न-भिन्न मुद्राओं में बात होती रही। उन्हें न सुन पाने के बावजूद मैंने उनकी बातों का पूरा मजा लिया क्योंकि मैं समझ सकता था कि उनके बीच क्या और कैसी बात हुई होगी। थोड़ी देर बाद जब सब्जीवाला अगले मोड़ पर गायब हो गया तो मैं लौट आया। मैं काफी संतुष्ट था कि चौदह सितंबर का बदला आखिरकार मैंने चौदह फरवरी को ले ही लिया। 'वैलेंटाइन डे मुबारक हो,' मैंने अपने आप से ही कहा और मुस्कराने लगा कि तभी वह बोरा उठाए एक अन्य घर से निकलता हुआ दिखाई पड़ा। अभी उसका पीछा करने का समय मेरे पास नहीं था क्योंकि साढ़े नौ बज चुके थे। मैं चीजों को कल तक के लिए टाल कर घर में घुस गया।

मेरा घर शहर के पश्चिम में है और इस शहर का पश्चिम, दुनिया के पश्चिम से कतई अलग नहीं है। सुबह से ही सड़कों पर वैलेंटाइन डे के रंग दिखाई पड़ रहे थे। इन की महकती हुई गंध मोटर साइकिल से छूट कर पीछे चलनेवालों को गुदगुदा जाती थी। आज युवक-युवतियों के कपड़े कुछ ज्यादा ही चुस्त थे। लगता था, शरीर अभी कपड़ों से उछल कर बाहर आ जाएगा। चौराहे-चौराहे पर पुलिस थी, न मालूम किसकी सुरक्षा के लिए वह मुस्तैद थी। पुलिस के नए-नए रंगरूट भी युवतियों को देख कर बेचैन हुए जा रहे थे लेकिन उनके जूते थे कि बराबर उन्हें इयूटी की याद दिला जाते। शहर की इस मुस्तैद सुरक्षा पर मैं अभिभूत था और अपने लेखक से बाकायदा इजाजत ले कर सरकार की जय-जयकार करते हुए एक झमाझम नारा लिखना चाहता था लेकिन फिर मैंने अपने ऊपर सवार हो रहे श्रीकांत वर्मा को परे ढकेल कर आशना पान पैलेस पर रका।

मेरी दिनचर्या में आशना पान पैलेस की वही जगह थी जो सुबह की चाय की होती है। मुझे गाड़ी लगाते देख कर ही वह एक सिगरेट निकाल कर सामने रख देता और कच्ची सुपारी और एक सौ बीस जर्दे का खर्रा घोंटने लगता। आशना पान पैलेस का मालिक अपनी खूबसूरती और नफासत के लिए ख्यात था। दो नौकर खर्रा घोंटने के लिए उसके पास तत्पर खड़े रहते, लेकिन अगर भीड़ न हो तो मेरा खर्रा वह खुद ही घोंटता। आज खर्रा घोंटते हुए उसकी आँखे सड़क पर गड़ी हुई थी। तेज रफ्तार मोटर साइकिल का पीछा करती हुई उसकी आँखें चौराहे पर खड़ी मोटर साइकिलों पर थिर हो जाती। पुतलियाँ तो जैसे लड़कियों की हर नाप-जोख का चित्र खींच रही थीं और बीच-बीच में वह हल्के से सिहर उठता था।

'क्यों भाई, भैलेंटिया गए हो क्या?' ठेठ देशी अंदाज में मैंने मजाक किया तो वह झेंप गया।

'वैंलेटाइन डे मुबारक हो,' मैंने उसकी झेंप को कुरेदा।

'जी...'

'मुबारक, मुबारक... बधाई, बधाई...'

वह मुझे भकुआ कर देखने लगा, ठीक वैसे ही जैसे पानी माँगने पर शुक्लाजी देख रहे

'खर्रा हो गया?' मैंने झल्लाते हुए पूछा।

'हऊ,' उसने खर्रा दिया। मैं थोड़ी सुपारी मुँह में दबा कर निकलने लगा, फिर कुछ सोच कर पलटा और कहा - 'हैप्पी वैंलेटाइन डे।'

वह खींसें निपोरने लगा। उसके खींसें निपोरने में अभी-अभी पुतलियों द्वारा ली जा रही एक्स-रे की रिपोर्ट भी झलक रही थी। बमुश्किल बाईस-तेईस साल के लड़के को मेरे जैसा पचास साला अधेड़ पकड़ ले तो झेंप तो होगी ही। मैंने फिर कहा - 'वैंलेटाइन डे मुबारक हो।'

'क्या हो?' उसके चेहरे पर भकुआहट लौट आई तो मैं मुड़ा - 'लगता है इ साला भी अंगरेजिया गया है,' मैंने अपने आप से ही कहा और गाड़ी चालू कर आगे बढ़ गया।

आज सुबह की ये दो घटनाएँ मामूली लग सकती हैं लेकिन ध्यान से देखने पर इनकी गंभीरता समझ में आती है। शुक्लाजी को पानी का अर्थ नहीं मालूम है और आशना पानवाला मुबारक शब्द को भूल चुका है! दरअसल ये दोनों निष्कर्ष मैंने शाम को ऑफिस से लौटते वक्त निकाले, जब मैंने अपनी कॉलोनी के बाहर की सब्जी दुकान पर ये मंजर देखा - एक आदमी पोटेटो माँग रहा था और सब्जीवाला समझ ही नहीं पा रहा था। ग्राहक बार-बार उसके आकार-प्रकार, रंग और स्वाद के बारे में बताता और

सब्जीवाला भी तरह-तरह की सब्जियाँ दिखाता। वह आलू और प्याज बोरे में दुकान के अंदर रखता था इसलिए ग्राहक उसे देख नहीं पा रहा था। दोनों में दिलचस्प बातें हो रही थीं। समझने-समझाने की ऐसी गहन प्रक्रिया और जुदा अर्थ निकालने की हँसोड़ कोशिशों से मुझे मजा आ रहा था। तब तक सब्जीवाले के दूसरे साथी दुकानदार भी वहाँ आ चुके थे और सब मिल कर पोटेटो के वास्तविक अर्थ तक पहुँचने में लगे थे।

'इन्हें आलू चाहिए,' मैंने सब्जीवाले से कहा और औपचारिकतावश उन साहब से पूछा - 'क्यों आलू ही चाहिए न आपको?'

वह भी मुझे भकुआ कर देखने लगा। सब्जीवाला और उसके दूसरे साथी एक रहस्य को सुलझा देने के कारण मेरे प्रति कृतज्ञता ज्ञापित कर लौट चुके थे और सब्जीवाला भी एक किलो आलू तौल चुका था।

'चौदह रुपए,' उसने चिल्ला कर कहा और इससे पहले कि ग्राहक के चेहरे पर भकुआहट लौटती, मैंने कहा - 'फोर्टिन रुपिस।'

'ओ...' जैसा भाव उसके चेहरे पर था। उसने पैसे चुकाए और आलू ले कर लौट गया।

एक बात यहाँ गौर करने लायक थी। सब्जीवाला और ग्राहक दोनों हिंदी में बात कर रहे थे लेकिन 'आलू' और 'चौदह' दोनों ही शब्दों को ग्राहक समझ नहीं पा रहा था बल्कि ठीक-ठीक कहें तो सुन ही नहीं पा रहा था! अब सब्जीवाला अपनी व्यथा कह रहा था -'साहब इहाँ अब आए दिन ऐसा होने लगा है। कोई सब्जियों के अँगरेजी नाम ले कर माँगता है। किसी को उसका दाम समझ में नहीं आता। इतनी छोटी-सी दुकान में अब सारी साब्जियाँ कैसे सामने रखें? हमने तो अब सब्जियों के चित्रवाला चारट टाँगना शुरू कर दिया है।'

मैं उसकी दुकान में चार्ट ढूँढ़ने लगा तो उसने कहा - 'अगले चौक में वो समरू यादव की दुकान है न, उसका लड़का आया था चारट माँगने के लिए। वहाँ किसी सब्जी को ले कर दिक्कत हो गई है। ऐसे में तो हमारा धंधा चौपट हो जाएगा। अब उमर भी ऐसी नहीं रही कि सब्जियों के अंगरेजी नामों का रट्टा लगाएँ और अंगरेजी की गिनतियाँ सीखें।'

यह सब सुन कर मुझे आश्चर्य हो रहा था। आश्चर्य से ज्यादा अजीब लग रहा था। 'ऐसा कब से हो रहा है? मैंने पूछा। 'यही कोई एकाध महीने से,' उसने बताया।

'अच्छा...', और मैं कर ही क्या सकता था इस शब्द को पूरी भाव भंगिमा के साथ उच्चारने के अलावा। मैंने सब्जियाँ खरीदीं और घर लौट आया।

मैं अच्छा-खासा परेशान हो गया था। चूँकि चिंतन मेरे जीवन का बुनियादी घटक है और वह मेरा मनोरंजन भी करता है, सो मैंने आज चिंतन में आकंठ डूब जाने का फैसला किया और चाय पीते हुए इस प्रक्रिया को बढ़ाने की गरज से पहला सवाल अपनी पत्नी पर दागा - 'यह बताओ कि मनुष्य जिन शब्दों के बीच अपनी जिंदगी गुजर-बसर करता है, जो शब्द दिमाग में पड़ी चीजों को उद्घाटित करते हैं, क्या वह उन शब्दों को कभी भूल सकता है?' मेरा प्रश्न दार्शनिकता के रस में कुछ ज्यादा ही डूब गया था।

'त्म सीधे बात नहीं कर सकते हो?' पत्नी ने झल्ला कर कहा।

'अरे यार, मैं तुमसे यह पूछ रहा हूँ कि क्या तुम ऐसे शब्दों को कभी भूल सकती हो जिनका इस्तेमाल रोज करती हो?'

'जैसे...?'

'जैसे यही चकला-बेलन, पानी का गिलास, आलू, लौकी या मकान या रोटी या...'

'जो चीजें हम वापरते नहीं, वह पड़े-पड़े खराब हो जाती हैं। फिर धीरे-धीरे हम उसे भूल जाते हैं। अब तुम्हीं बताओ, घर में कई ऐसी चीजें होंगी जिन्हें जरूरी मान कर हमने कहीं रख दिया होगा। क्या वो सारी चीजें हमें याद हैं?'

'लेकिन क्या उनकी याद दिलाई जाए तब भी याद नहीं आएँगी, और फिर मैं रोज की चीजों की बात कर रहा हूँ।'

'ऐसा हो भी सकता है और नहीं भी...'

'नहीं हो सकता है का क्या मतलब?' मैंने लगभग कुढ़ते हुए पूछा, क्योंकि मेरे भीतर का चिंतक अब पति-धर्म की राह पकड़ चुका था।

'नहीं हो सकता है का मतलब तुम्हारा सिर...' स्त्री सबलीकरण की आँच में पगी पत्नी ने पलटवार किया और भीतर चली गई। मैंने भी अपने भीतर के पति को जब्त किया और उसे चिंतन की राह में अवैतनिक काम पर लगाया। लेकिन जैसा कि अवैतनिक कामों का परिणाम होता है, चिंतन के इन क्षणों का निष्कर्ष सिफर ही रहा।

दूसरे दिन सूरज की नरम किरणों ने जब खिड़की से भीतर आ कर मुझे थपकी दी तब जागा। यही कोई आठ बजे। आठ बजे उठना यानी मेरी दिनचर्या में एक घंटे की देरी। अपना उठना जता कर मैं बिस्तर पर ही चाय का इंतजार करने लगा, जोकि मैं रोज ही करता हूँ।

'टोमेटो... टोमेटो... काली फ्लावर... चिली...' सड़क पर दूर से आती आवाज थी।

अच्छा, तो अंग्रेज भी यहाँ अब सब्जी बेचने के धंधे में लग गए हैं। वैश्विक मंदी का यह असर तो होना ही था। अब सालों को पता चलेगा कि मंदी जब बूमरेंग की तरह लौटती है तो... बदलेवाली मुस्कराहट मेरे चेहरे के एक कोने में नमूदार हुई और मैं इस इक्कसवीं सदी के सब्जीवाले को देखने के लिए घर से बाहर निकल आया।

'अरे...' बेसाख्ता मेरे मुँह से घोर आश्चर्य में डूबा हुआ शब्द कूद पड़ा और आँखें इतनी फैल गईं मानो पूरे चेहरे में केवल वही रहना चाहती हो। यह तो अपनी कॉलोनी का तयशुदा सब्जीवाला था जिसकी मार्फत मैंने कल शुक्लाजी से बदला लिया था।

'ओ सब्जीवाले, इधर आओ,' हालाँकि वह इधर ही आ रहा था, फिर भी मैंने उसे पुकारा ताकि वह जल्दी चला आए।

'क्यों भाई, क्या तुमको अमरीका का वीजा मिल गया है, जो सब्जियाँ अंग्रेजी में बेचने की तैयारी कर रहे हो? या इन्हें सीधे वहीं से मँगाया है?'

मेरी बात में छिपे व्यंग्य को वह कितना समझ पाया यह तो नहीं कह सकता लेकिन वह हैं-हैं करने लगा और पूछा कि मुझे क्या चाहिए - 'काली फ्लावर कि टोमेटो कि चिली कि लेडी फिंगर कि...'

'एक मिनट... एक मिनट...' उसकी तानसेनी लय को तोड़ते हुए मैंने पूछा - 'कल तक तो यह फूल गोभी थी। आज कॉली फ्लावर कैसे हो गई श्रीमान जी?'

मेरी बात अब उसकी पकड़ में आई - 'क्या करें साहब, गोभी कहने से कोई बाहर नहीं आता, टमाटर को लोग समझ नहीं पाते और भिंडी को तो ये भूल ही चुके हैं। पिछले कई दिनों से सब्जियों के नाम चिल्लाता हुआ कालोनी में घूम रहा हूँ लेकिन खरीदने के लिए कोई बाहर नहीं निकलता। अब मैं जो बेच रहा हूँ उसका नाम ले कर चिल्लाता रहूँ और लोग समझें ही नहीं तो बाहर क्यों निकलेंगे? इसलिए कल रात गोलू से किताब माँग कर इन अंगरेजी नामों का रट्टा लगाया और देखो आज इसी सड़क पर सत्तर रुपए की ग्राहकी हो गई। तो आपको क्या दूँ काली फ्लावर की लेडी फिंगर?'

'मुझे तो तुम आधा किलो फूल गोभी ही दे दो और देखो फूल अच्छे होने चाहिए, देशी।'

'साहब, आपने हिंदी में माँगा है तो सबसे अच्छा फूल दूँगा और थोड़ा ज्यादा भी,'
तौलते हुए उसकी बक-बक जारी रही, 'कितना अच्छा नाम है इसका फूल गोभी, ससुरों
ने इसे काला फूल बना दिया। क्यों साहब, फ्लावर फूल को ही कहते हैं न? काली
फ्लावर मतलब काला फूल। है तो गोभी सफेद लेकिन कहेंगे काली फ्लावर, अरे रखना
ही था तो भाइट फ्लावर रख देते। कुछ तो मर्जादा बची रह जाती गोभी की। ठीक ही है,
जब मर्जादा देस में ही नहीं बची तो ससुरी सब्जियों में कहाँ से बचेगी?'

'कितना हुआ?'

'दस रुपए मतलब टेन रुपिस।'

'अच्छा... अच्छा...' मैंने भीतर से दस रुपए ला कर उसे दे दिए और उसके भीतर फूल गोभी बेच लेने के संतोष को देखता रहा। उसके धंधे का समय नहीं होता तो उससे थोड़ी देर और बात करता। लेकिन अभी मुमकिन नहीं था। वह कॉली फ्लावर, टोमेटो और लेडी फिंगर की गुहार लगाता हुआ आगे बढ़ गया।

कुछ तो भयंकर हो रहा है, मैंने सोचा। यह बात मामूली नहीं है कि लोग सब्जियों के नाम भूल जाएँ, पानी का नाम भूल जाएँ। ऐसा नहीं था कि इनकी उपयोगिता खत्म हो गई थी, बस उन्हें पुकारने की जुबान बदल गई थी। लेकिन क्या यह इतनी मामूली बात है? एक नाम को भुला दिया जाना यानी एक शब्द को भुला दिया जाना। भाषा के भीतर एक शब्द को गढ़ने में कितना समय और श्रम लगा होगा और अब वे इतनी आसानी से छूटते चले जा रहे हैं!

यही सब सोचता हुआ मैं घर के बाहर खड़ा था कि वह मुझे फिर दिखा। अबिक बार मेरी ओर ही आता हुआ। उसके भीतर, अपनी ओर आते देख कर मैंने महसूस किया, एक ऐसी रहस्यात्मक शिक्त है जिससे आप बचना चाहते हैं लेकिन फिर भी बँधते चले जाते हैं। वह मेरे सामने खड़ा हो कर मुस्करा रहा था। उसकी आँखें हरी-हरी थीं। मुझे लगा कि वह आक्रमण करने की फिराक में है। मैं एहतियातन सतर्क हो गया। हालाँकि मैं बिल्कुल नहीं जानता था कि मुझे कौन-सी चीजें उससे बचानी हैं। मेरी इस उधेड़बुन को वह शायद भाँप रहा था। आखिरकार उसने कहा - 'अंदर आने के लिए नहीं कहेंगे लेखक जी?'

अँय्... तो इसे यह भी मालूम है कि मैं लेखक हूँ। खुशी और आश्चर्य के मिले-जुले भाव में डूबते-उतराते मैंने सोचा और कहा - आइए। उसकी विनम्नता का लहजा आदेशात्मक था और मैं किसी सम्मोहित मनुष्य की तरह उसका केवल पालन कर रहा था। मैंने देखा कि सोफे में बैठते ही बोरा उसने गोद में ले लिया, जबकि वह उसे जमीन पर भी रख सकता था।

'तो आप शब्दों के बाजीगर हैं,' अपनी मुस्कराहट के बीच से शब्दों को फेंकते हुए उसने कहा, 'लेकिन आपको नहीं लगता कि जिन शब्दों से आप अपना लेखकीय वैभव गढ़ते हैं उनके प्रति विश्वसनीयता लगातार कम हो रही है?'

बह्त देर तक मैं उसके वाक्यों में उलझा रहा। अव्वल तो मुझे यह समझ में नहीं आ रहाँ था कि उसने मुझसे प्रश्न पूछा है या अपनी राय जाहिर की है। फिर भी मुझे क्छ तो कहना ही था सो उसकी मुस्कराहट के बीच मैंने अपने वाक्य तरतीब से रखे -'बतौर लेखक, मुझे नहीं लगता कि मैं शब्दों का बाजीगर हूँ। बाजीगर नए-नए खेल ईजाद करता है। मैं कोई नया शब्द नहीं गढ़ता बल्कि जो शब्द लोगों के बीच चलन में हैं उनका इस्तेमाल भर करता हूँ। मुझमें और दूसरे लोगों में यह डिफरेंस है कि दूसरे लोग शब्दों का इस्तेमाल कैजुअली करते हैं जबकि मैं सोच-समझ कर।' उसके मुस्कराने का अंदाज आक्रामक ह्आ जा रहा था और मैं भी अपनी रौ में था, 'देखिए, लैंग्वैज की जो पॉलिटिक्स होती है वह किसी भी दूसरी पॉलिटिक्स से इस मायने में खतरनाक होती है वह धीमे-धीमे अपना असर दिखाती है। आप उसे धीमी असरवाला पाइजन भी कह सकते हैं, जो धीमे-धीमे मनुष्य को, उसकी चेतना को मार देता है। हम लेखक भाषा की इसी पॉलिटिक्सके खिलाफ उसे बचाने की फिक्र में इस फील्ड में डटे हुए हैं। आप खुद ही बताएँ, क्या भाषा के बिना यह दुनिया यहाँ तक पहुँच सकती है जहाँ कि आज वह है। ऊपरी तौर पर भले यह पॉलिटिक्स न लगे लेकिन हैं तो पॉलिटिक्स ही क्योंकि इसके जरिए एक ज्बान ही नहीं उसके बोलनेवाले समस्त लोग हाशिए पर डाल दिए जाते हैं। पिछले कुछ दिनों से मैं महसूस कर रहा हूँ कि लोग शब्दों को भूलते चले जा रहे हैं। यदि इसी तरह यह चलता रहा तो होगा एक दिन यह कि हम किसी और लैंग्वेज के बाशिंदे हो कर रह जाएँगे। तब हम दरअसल उधार की जिंदगी जी रहे किसी अबोध नागरिक की तरह होंगे...' अपने चिंतन के रेशे-रेशे को मैंने उसके सामने रख दिया था, 'खैर छोड़िए, आप चाय पिएँगे?'

'हाँ हाँ, जरूर।' उसने उत्साह के साथ कहा मानो उसका कोई जरूरी काम पूरा हो चुका था।

चाय पीते हुए भी इधर-उधर की कुछ सामान्य बातें होती रहीं। नौकरी के बारे में पूछने पर मैंने उसे बताया - 'नौकरी तो खैर, मेरी बहुत मजेदार है। करना कुछ नहीं होता। बस, अपनी साहबी का रौब झाड़ते हुए बेल बजाओ और पियुन हाजिर। उससे किसी क्लर्क को बुलवा कर कुछ डॉक्युमेंट्स मँगवा लो। ऑर्कियोलॉजी डिपार्टमेंट के किसी अफसर को इससे अधिक क्या काम हो सकता है? आप तो समझ ही सकते हैं।'

घड़ी पर मेरी नजर पड़ी। नौ बज कर चालीस मिनट हो रहे थे। मुझे अब ऑफिस के लिए तुरंत तैयार होना था। उसने भी मेरी व्यग्रता भाँप ली और उठ खड़ा हुआ। उसकी आँखें अब भी मुस्करा रही थीं और उनमें घर आने का कोई प्रयोजन पूरा हो जाने का-सा भाव था। उसने अपना भरा हुआ बोरा पीठ पर लादा और मुझसे हाथ मिला कर चला गया।

'कौन था ये?' पत्नी ने पूछा।

'क्या पता, पिछले एकाध महीने से कॉलोनी में दिखाई पड़ रहा है।'

'क्या कह रहा था?'

'कह कुछ नहीं रहा था, केवल मुस्करा रहा था।'

'तो जवाब में तुम भी मुस्कराते रहते। लंबा-चौड़ा भाषण देने की क्या जरूरत थी? आखिर उसे बोलना ही पड़ता कि वो कौन है और क्यों आया है। लेकिन तुम तो लेखक हो न। बोलने और लिखने से बाज कहाँ आओगे?'

'यह सहज रास्ता मेरी समझ मे क्यों नहीं आया?' दाढ़ी बनाते हुए मैं पत्नी के इस असामान्य विवेक पर हतप्रभ था। वह कहे जा रही थी - 'कोई चौर-उचक्का या उठाईगीर तो नहीं था? आजकल चोर-उचक्के भी बन सँवर कर आते हैं और पलक झपकते ही सामान साफ कर देते हैं। तुमने उसे अपना बोरा बाहर रखने के लिए क्यों नहीं कहा?'

किसी ने जैसे मुझे बिजली का नंगा तार छुआ दिया हो। मैं दौड़ कर ड्राइंग रूम में आया।

'क्या हुआ...?' पत्नी भी हड़बड़ाते हुए पीछे दौड़ी।

में ड्राइंग रूम की एक-एक चीज को याद कर देखने लगा कि वे अपनी जगह हैं या नहीं।

'क्या हुआ... कुछ बोलोगे भी...?'

'मुझे अच्छी तरह याद है कि जब वह आया था तो उसका बोरा खाली था,' परेशान होते हुए मैंने कहा, 'वह यहीं बैठा था और बोरा उसकी गोद में था, लेकिन जब वह जा रहा था तो बोरा भरा हुआ था। आखिर क्या ले गया वो यहाँ से? सबकुछ तो अपनी जगह पर है।'

'हे भगवान...' पत्नी ने माथा पीटते हुए कहा, 'तो तुमने उसका बोरा खुलवा कर देखा क्यों नहीं? जाओ, दौड़ कर पकड़ो उसे, उसके बोरे की तलाशी लो।' और वो खुद कमरे के एक-एक सामान की तफ्तीश करने लगी - शो पीस, सिगरेटदानी, टेबलघड़ी, अखबार, लाइटर, फोटोफ्रेम... सब-कुछ तो है। 'तुम्हें अच्छी तरह याद है कि आते समय उसका बोरा खाली था?'

'हाँ हाँ, अच्छी तरह याद है,' हवाई चप्पल डाल कर बाहर भागते हुए मैंने कहा। मैं कॉलोनी में उसे हर जगह तलाशा। एक दो लोगों से पूछा भी, लेकिन वो नहीं मिला। आखिरकार मायूस हो कर लौटा। पत्नी फाटक पर ही खड़ी थी - 'मैंने ड्राइंग रूम अच्छी तरह से देख लिया है। कोई चीज गायब नहीं है।

फिर वो यहाँ से ले क्या गया? मैं परेशान था।

पत्नी की फटकार शुरू थी - 'यही तो तुम लोगों में और हममें --- है। तुम लोग करते पहले हो और सोचते बाद में हो। दुनिया की जो साधारण चीजें हैं उन्हें भूले रहोगे लेकिन --- की बात करो, --- की बात करो तो घड़ी मिला कर दो घंटे भाषण झाड़ दोगे।'

पत्नी बोलते-बोलते शब्दों को खाए क्यों जा रही है - 'तुम आधी-अधूरी बात क्यों कर रही हो?'

'कौन-सी आधी-अधूरी बात?'

'त्मने जो अभी बोला था, फिर से बोलो।'

'क्या बोला था?' पत्नी ने हैरान होते हुए पूछा।

'अरे, तुमने अभी कहा था कि यही हममें और तुम लोगों में कुछ --- है।' 'मैंने कहा कि यही तुम लोगों में और हममें --- है।' 'क्या है?'

'--- है, --- है, ऊँचा सुनने लगे हो क्या?' झल्ला कर उसने कहा।

'मैं तुम्हारा वह शब्द सुन नहीं पा रहा हूँ।'

'सुन नहीं पा रहे हो? पत्नी की आँखें आश्चर्य से फैल गईं। उसने इस बार चिल्लाते हुए कहा। उसका चेहरा देखते हुए तो मुझे यही लगा - '---, ---, ---।'

मैं गौर से उसे देख रहा था। उसका मुँह तो हिल रहा था लेकिन शब्द मुझ तक नहीं पहुँच पा रहे थे। जैसे किसी ने मेरे स्मृति-पटल से उस शब्द के समस्त चिहन पोंछ डाले हों और उसे ग्रहण करने के तंतुओं को कुचल कर नष्ट कर दिया हो। मैं भकुआ कर देखने लगा। पत्नी डर गई। उसने मेरा माथा छू कर देखा - 'तबीयत खराब है क्या?' चिंता पूरी तरह उसके चेहरे पर उतर आई थी।

मैं मायूस हो कर सोफे पर धम्म से बैठ गया। पत्नी पानी ले कर आई। घड़ी डपट कर सवा ग्यारह का समय बता रही थी।

'जाना जरूरी नहीं हो तो आज छुट्टी ले लो।'

'नहीं, आज बहुत काम है।' मैंने बहाना बनाया और ऑफिस जाने के लिए उठ खड़ा हुआ। ऐसी हालत में घर में रहता तो पत्नी अपनी अतिरिक्त तीमारदारी से मुझे और मुश्किल में डाल देती। ऑफिस से जल्दी आने का वादा कर मैं निकल गया।

स्कूटर अपने गंतव्य की ओर चली जा रही थी। आज वह आशना पान पैलेस पर भी नहीं रुकी। मैं उसे चला तो रहा था लेकिन मेरा मन उन्हीं खोए हुए शब्दों के आस-पास की जगहों को टटोल रहा था। जमीन से किसी विशाल वृक्ष को उखाड़ दो तो जैसे भद्दा-सा निहायत बदसूरत गड्ढा बचा रह जाता है, मेरे मन में भी एक ऐसा ही गड्ढा बन चुका था। एक अंधे पागल की तरह मैं बार-बार उस गड्ढे और उसके आस-पास की मिट्टी को छू कर उस पेड़ का अंदाजा लगाना चाहता था लेकिन उसका कोई चिहन वहाँ नहीं था। न सूखी पत्तियाँ, न जड़ों के रेशे, न उस पर बैठनेवाले पंछियों की चहचहाहट और न ही अंडों के सूखे खोल।

दुनिया के एक हारे हुए आदमी की तरह मैं ऑफिस पहुँचा।

गनीमत होती अगर मेरी परेशानी यहीं पर आ कर रुक जाती। लेकिन आज मुझ पर रहम कहाँ था। आज तो जैसे मैं हमले के सबसे माकूल केंद्र की तरह चुन लिया गया था। अपने केबिन में पहुँच कर मैं कुर्सी में धँसा ही था कि चपरासी सलाम ठोंकने चला आया। मेरे लिए वह संखाराम राउत था और थोड़ा मुँहलगा भी, क्योंकि एक तो लेखक होने के नाते में उस पर अपनी अफसरी की बारिश नहीं करता था, और दूसरा, मौके-बेमौके उसकी आर्थिक मदद भी कर दिया करता था। वह हमारे डिपार्टमेंट का चलता-फिरता सूचना केंद्र था। उसकी खल्वाट खोपड़ी के भीतर न जाने कितनी सच्ची-झूठी खबरें, घरेलू इलाज के न्स्खे और जाद्ई यथार्थ कहे जानेवाले अजीबो-गरीब किस्से भरे पड़े थे। हमेशा की तरह उसका प्रसारण केंद्र शुरू हो चुका था, गों कि यही उसका वास्तविक काम हो - 'साब, वो बारूद --- वाले वैद्य साब हैं न, जिनका चक्कर अपने ऑफिस की शेंद्रे बाई से है, कल रात उसने अपने बीवी-बच्चों को --- दे दिया। बच्चे तो घर में ही खल्लास हो गए, बीवी मेडिकल में पड़ी है। लोग बोल रहे थे कि वो भी बचेगी नईं। अपनी शेंद्रे बाई ने उस पर जादू कर दिया है। पिछले महीने की पचीस तारीख को वो छ्ट्टी पर गई थी न, असल में वो सावनेर के एक बाबा के यहाँ गई थी। वहीं से कोई प्ड़िया ले कर आई और वैद्य साब को खिला दिया। अब जादू में बँधे बिचारे साब क्याकरते? अपने बीवी बच्चों को --- दे दिया।

'एक मिनट संखाराम,' उसकी राजधानी एक्सप्रेस को लाल झंडी दिखा कर मैंने रोका, 'कौन वैदय साहब?'

'वही अपने बारूद डिपार्टमेंटवाले', उसने कहा।

'नहीं, उसके पहले क्या कहा था।'

'यही तो कह रहा था, अपने बारूद डिपार्टमेंट वाले वैद्य साब,' उसे आश्चर्य हो रहा था। उसे क्या मालूम कि मैं किस तकलीफ में था।

'अच्छा, उसने अपने बीवी-बच्चों को क्या दे दिया?'

'--- दे दिया', तोते की तरह उसने कहा।

'क्या दे दिया, फिर से बोलो।'

'---, --- ' कान के करीब आ कर उसने कहा। तंबाकू और नस की मिली-जुली परेशान कर देनेवाली गंधाती हवा जब मेरे चेहरे से टकराई तब मैंने मान लिया कि उसने जरूर कुछ कहा होगा, जिसे मैं सुन नहीं पा रहा हूँ।

मैं चुप।

सखाराम भी चुप मानो इंतजार कर रहा हो कि कहानी आगे सुनाऊँ या उसी शब्द को और जोर से दोहराऊँ।

'सखाराम,' अपनी मायूसी को बगैर छुपाए मैंने उससे कहा, 'मैं तुम्हारा वह शब्द सुन नहीं पा रहा हूँ।'

'कान में मैल होगा साब, रात को सरसो तेल में लहसुन डाल कर गर्म करना और जब तेल हल्का गर्म रह जाए तब धीरे-धीरे कान में डालना और सो जाना। सबेरे तक सारा मैल बाहर आ जाएगा।' किसी वैद्य की तरह उसने अपना नुस्खा ठोंक दिया था।

मैं चुप ही रहा।

मुझे परेशान जान कर वह किसी कुशल सेवक की तरह चाय ले आया। मैं चुपचाप चाय पीता रहा। इस बीच बड़े साहब की बेल बजी और वह चला गया।

कमरे में पंखे की घिर-घिर्र थी। पतियों के गिरने की आवाज थी। हवा के झोंके के साथ सूखी पतियाँ एक साथ जब दौड़तीं तो उनकी आवाज कमरे में फैल जाती। प्रिंटिंग मशीन किर्र-किर्र की आवाज के साथ अपना काम कर रही थी। किसी का मोबाइल बज रहा था। गाड़ियों के हार्न की आवाज सुनाई पड़ रही थी। मैं सबकुछ सुन पा रहा था। सारी आवाजें मेरे मस्तिष्क के निश्चित खानों में अपनी उपस्थिति दर्ज करवा रही थीं। लेकिन मैं कुछेक शब्द नहीं सुन पा रहा था। यह कैसी बीमारी है? मुझे पसीना आने लगा। किसी अनजान आशंका से घबरा कर मैं काँपने लगा।

सखाराम लौट आया और मेरे सामने खड़ा था।

मुझे सहसा एक तरकीब सूझी - ' सखाराम, जो शब्द मैं सुन नहीं पा रहा हूँ, क्या उसे तुम इस पेपर पर लिख सकते हो?'

'बिल्क्ल साब।'

मैंने एक खाली पन्ना उसके सामने रख दिया। जैसे वह श्रुति-लेख की परीक्षा दे रहा हो, बहुत जमा-जमा कर उसने लिखा।

मैंने उसे पढ़ा - 'ज', फिर आगे 'ह', और अंत में 'र'। लेकिन इन तीनों अक्षरों को मिला कर नहीं पढ़ पा रहा था और न ही इन अक्षरों की मार्फत कोई शब्द मुझ तक पहुँच रहा था। घबरा कर वह पन्ना मैंने अपने सामने से हटा लिया।

'क्या हुआ साब, फिर से लिखूँ?' सखाराम अब भी मेरी मदद करने के लिए तत्पर था।

'नहीं सखाराम...,' मैं रँआसा हो गया, 'मुझे कुछ समझ में नहीं आ रहा है। यह बिना मात्राओंवाला साधारण-सा शब्द मैं पढ़ नहीं पा रहा हूँ और समझ भी नहीं पा रहा हूँ।'

'साब, मुझे तो लगता है कि किसी ने आप पर जादू कर दिया है,' उसने अपनी समझ का पिटारा खोलना शुरू कर दिया था।

'क्या बकवास कर रहे हो?' मैंने उसे झिड़कते ह्ए कहा।

'नहीं साब, वाजिब बोल रहा हूँ। पिछले साल की बात है। हमारे मुहल्ले में एक बाई रहती है। एक दिन सुबह जब वह उठी तो अपने मरद को पहचान नहीं पा रही थी। सच्ची बोलता हूँ साब, सबको पहचान रही थी, बस अपने मरद को नहीं पहचान रही थी। उसे एक तात्रिक के पास ले कर गए। तब पता चला कि उस पर किसी ने टोना कर दिया था। तांत्रिक ने अमावस की रात कबूतर का ताजा खून, नींबू, कच्चा दूध और पाँच सौ एक रुपए ले कर आने को कहा। तब कहीं जा कर बड़ी मुश्किल से उसका जादू खुला। अब वो ठीक है। लेकिन अमावस में कभी-कभी अपने मरद को नहीं पहचान पाती। तब तांत्रिक द्वारा दिए गए मोर पंख को उसके सिर के चारों ओर घुमा कर तीन बार मारना पड़ता है।'

और कोई समय होता तो मैं उसकी बात पर हँस पड़ता लेकिन आज हिम्मत नहीं हुई। मेरी चुप्पी से उसका हौसला बढ़ गया था और किसी तांत्रिक के हेल्पर की तरह उसने अपना इलाज शुरू कर दिया था - 'साब, आप पर किसी ने जादू कर दिया है। अच्छा बताइए, ऐसा कब से हो रहा है?'

'क्या कब से हो रहा है?'

'ऐसा, ऐसा...', उसने जोर से कहा।

'धीरे बोलो सखाराम,' मैंने डपटते ह्ए कहा।

'सारी साब, मुझे लगा आप इसे भी सुन नहीं पा रहे हैं।'

'जो शब्द मैं सुन नहीं पा रहा हूँ उसे जोर से बोलने से भी सुन नहीं पाऊँगा, इसलिए धीरे बोलो।'

'अच्छा साब, ऐसा कब से हो रहा है? मतलब आपको ठीक-ठीक कब पता चला कि आप शब्दों को सुन नहीं पा रहे हैं?'

'आज सुबह से ही।'

'आज स्बह आप किस किससे मिले?'

'आज..., मैं याद करने लगा, ' आज सुबह पत्नी से, फिर सब्जीवाले से फिर तुमसे... नहीं... नहीं... तुमसे पहले तो उससे...'

एकाएक सुनहरे फ्रेम के भीतर से झाँकती हुई हरी-हरी आँखें मेरे वजूद पर फैलती चली गईं, जैसे स्याही की बूँद स्याही-सोख्ता पर फैलती चली जाती है। उन आँखों की याद ने मुझे कपड़े की तरह चीर दिया था। हालाँकि वह रहस्यमय व्यक्ति यहाँ नहीं था लेकिन अपने आस-पास मुझे वही, केवल वही दिखाई पड़ रहा था। फाइल में उसकी आँखें थीं, दीवार घड़ी में, दरवाजे में, टेबल में, कलम में... सखाराम की आँखें उसी की आँखें थीं। मुझे लगा, मेरे चश्मे से अपनी आँखें सटा कर वह मुझे घूर रहा है। मेरे इर्द-गिर्द सारी चीजों का रंग धीरे-धीरे हरा होने लगा। हरा रंग फैल रहा था। मैं हरे रंग के समुद्र में डूब रहा था... डूबता जा रहा था। मैं बुरी तरह काँपने लगा। पहले कनपटी के नीचे से पसीने की धार निकली। फिर धीरे-धीरे सारा शरीर ही पसीने से भीग गया। मैं होश खोने लगा। सखाराम मुझे झिंझोड़ रहा था '...साब...साब...' बेहोशी में पूरी तरह डूबने से पहले मैंने उसकी आवाज सुनी - 'उससे किससे साब... उससे किससे...?'

मैं जब होश में आया, डिपार्टमेंट के सारे लोग मुझे घेर कर खड़े थे। कोई पंखा झल रहा था, कोई पानी के छींटे मार रहा था। एक ने डॉक्टर को फोन कर दिया था। डाक्टर ने मेरी नब्ज देखी। ब्लड प्रेशर चेक किया, जो कि बहुत ज्यादा था। उसने कुछ जरूरी हिदायतें दी। तात्कालिक दवाएँ और टेस्ट की लंबी-चौड़ी लिस्ट थमा कर तथा दो दिन बाद अस्पताल में मिलने के लिए कह कर चला गया। मैं बड़े साहब की गाड़ी में घर भेज दिया गया।

पत्नी मुझे इस हाल में देख कर बहुत ही डर गई थी। वह पूना में पढ़ रहे दोनों अथवा किसी एक बच्चे को बुला लेना चाहती थी लेकिन मैंने ही मना कर दिया और विश्वास दिलाया कि मुझे कुछ नहीं हुआ है। केवल ब्लड प्रेशर थोड़ा बढ़ गया था जो अब कंट्रोल में है। मैं किसी को बता नहीं सकता था कि मुझे हुआ क्या है। अव्वल तो मैं खुद भी नहीं जानता था। आराम करने के इरादे से मैं लेट गया और आँखें मूँद लीं। मुझे सोता जान कर पत्नी अपनी दिनचर्या में लौट गई। लेकिन वह इस सतर्कता से काम कर रही थी कि आवाज कम से कम हो। बीच-बीच में वह मेरे पास आती, फिर सिरहाने खड़े हो कर गौर से देखती, मेरा माथा छू कर न जाने क्या देखती, शायद बुखार... और फिर दबे पाँव चली जाती।

पत्नी की संतुष्टि के लिए मैं आँखें बंद किए हुए पड़ा था लेकिन भीतर एक विशाल भँवर बन चुका था, जो मुझे डुबो देना चाहता था। चिंता इस बात की नहीं थी कि ब्लड प्रेशर के बढ़ जाने से मैं बेहोश हो गया। यह तो तात्कालिक समस्या थी। बाजार में ढेरों दवाइयाँ मिल जाएँगी। लेकिन मैं उन शब्दों को कैसे हासिल करूँगा जिन्हें मैंने खो दिया है! मुझे तो यह भी नहीं मालूम कि मैंने किन-किन शब्दों को खो दिया है! पत्नी पास आ कर जब अपना ठंडा हाथ माथे पर रखती है तो क्या पता कुछ पूछती भी हो, जिसे मैं सुन नहीं पा रहा होऊँ। सामनेवाले कमरे में टेलीविजन शुरू था। उसके शब्द मुझ तक पहुँच रहे थे और उनके सुन पाने की बेहद संतुष्टि थी मुझे। फिर एकाएक आवाज आनी बंद हो गई। क्या मैंने अपने सारे शब्द खी दिए? मैं हड़बड़ाते हुए उस कमरे में पह्ँचा। पत्नी ने टेलीविजन बंद कर दिया था। मुझे अचानक कमरें में देख कर वह डर गई। पूछा - 'कुछ चाहिए?' अपनी बेचैनी छिपाते ह्ए मैंने पानी माँगा। मैं खुश था कि शब्द अब भी मेरे पास हैं। मैं अभी हर वाक्य को सुनना चाहता था, हर शब्द को सुनना चाहता था ताकि जो सुन नहीं पाऊँ उसे लिख कर एक लिस्ट बना लूँ। कम से कम ये तो पता रहे कि कितने शब्द मेरे अंतर्मन से गायब हो चुके हैं। एक अजीब-सा अनगढ़ भय मेरे चारों ओर छाया हुआ था और जिसका कोई ओर-छोर न था। लेकिन मैं उसके रंग को देख पा रहा था - सुनहरे चौकोर फ्रेम के भीतर फैलता ह्आ चमकदार हरा। मैं जहाँ से भी सोचना शुरू करता, अंतिम रूप से उसी हरे पर पहुँच कर पस्त हो जाता।

रात खामोशी के जल में सो गई थी। खामोशी, जिसे मैं अपने लेखक के लिए सबसे महत्वपूर्ण और उपयोगी क्षण मानता रहा हूँ लेकिन आज उससे बहुत डर लग रहा था। ऐसा लग रहा था जैसे इस खामोशी में बहुत सारे खोए हुए शब्द हैं। मैं बार-बार उसे कुरेदता लेकिन हाथ कुछ नहीं आता। पत्नी बगल में सोई थी, किसी भी खटके के साथ उठने के लिए तत्पर, इसलिए में करवट भी बहुत सँभल कर बदल रहा था। लेकिन मैं अपनी नींद कहाँ से लाऊँ? जब तक अपने ऊपर सवार इन अनजान आशंकाओं से मुक्त नहीं हो जाता तब तक मैं सो नहीं सकता। मैंने इसे समझ लिया था और मुक्त होने की कोशिश करनी शुरू भी कर दी थी। यानी अपने आपको समझाने की जबर्दस्त मुहिम कि क्या हुआ जो मुझसे कुछ शब्द खो गए। उनके बिना क्या मैं जी नहीं सकता हूँ? शब्दकोश में हजारों शब्द पड़े होते हैं उपयोगिता या चलन से चुके हुए, क्या उनके बिना दुनिया का काम नहीं चलता? जब दुनिया का काम चल सकता है तो मेरा क्यों नहीं? जो खो गया सो खो गया, उसका मलाल क्यों? यह सारी परेशानी इसलिए क्योंकि मैं लेखक हूँ। अब हूँ तो हूँ। ऐसा लेखक होना भी किस काम का जो खोए हुए शब्दों के पीछे हाथ धो कर पड़ जाए। मैंने अपने लेखक की थोड़ी मलामत की, फिर खुद से ही पूछा - 'क्या दुनिया की दूसरी --- के लेखक भी इस तरह के संकट से जूझते होंगे...? एक मिनट... एक मिनट...' अपने प्रवाह पर मैंने ब्रेक लगाया। मेरे सोचे हुए वाक्य मे भी एक खाली स्थान था। मन ही मन मैं बार-बार उस वाक्य को दुहराने लगा - 'दुनिया की दूसरी --- के लेखक...'

उस खाली स्थान पर मुझे एक हरी बूँद दिखाई पड़ी, जिसने उस शब्द को सोख लिया था। फिर अपने आस-पास कई ऐसी बूँदें नाचती हुई दिखीं जो शब्दों को निगल रही थीं। फिर वही हरा... शायद सखाराम सही कह रहा था, मुझ पर किसी ने जादू कर दिया है। सखाराम और जादू की याद आते ही किसी सिनेमा की तरह सिलसिलेवार दृश्य याद आने लगे - कबूतर का ताजा खून, नींबू, अपने पित को न पहचान पा रही औरत की सूनी आँखें और... और... सबसे अंत में वही सुनहरे फ्रेमवाला रहस्यमय व्यक्ति...। अपने मुँह से निकलती चीख को बमुश्किल मैंने जब्त किया लेकिन फिर भी खटका तो हो ही गया और पत्नी जाग गई। उसने मेरे माथे को छू कर देखा। मैंने अपनी आँखें कस कर बंद कर रखी थीं लेकिन कोई बच्चा भी जान जाता कि मैं सो नहीं रहा हूँ।

'क्या हुआ, कोई सपना देखा?' पत्नी ने धीमे-धीमे मेरे बालों को सहलाते हुए जब कोमलता से पूछा तो मैं फफक-फफक कर रो पड़ा। पत्नी दिलासा देती रही कि मुझे कुछ नहीं होगा। मैं भी जानता था कि मुझे कुछ नहीं होगा लेकिन जो हो चुका था उसका क्या करूँ? मैंने अपनी पत्नी के गर्म और धड़कते सीने में अपनी सिर छुपा लिया और देर तक सुबकता रहा। फिर न जाने कब नींद लग गई। खोए हुए शब्दों की चिंता से मुझे थोड़ी देर के लिए मुक्ति मिल गई थी।

सुबह उठा तो नींद के कारण स्थगित आशंकाओं ने मुझे फिर दबोच लिया। शायद वे मेरे सिरहाने खड़ी थीं और मेरे जागने का इंतजार कर रही थीं। न मालूम मुझे यह कैसे विश्वास हो चला था कि मेरी इस अपरिचित और अपरिभाषित बीमारी का इलाज उसी रहस्यमय व्यक्ति के पास है। कुछ समय के लिए तो मुझे यह भी लगा कि यह किसी भयानक मनोरोग का लक्षण है। मैंने शहर के किसी प्रतिष्ठित मनोचिकित्सक से मिलने का मन भी बनाया। लेकिन फिर खुद से ही जिरह करते हुए इस आशंका को उखाड़ फेंका कि मेरी समस्या कुछ शब्दों के खो जाने की बेचैनी से पैदा हुई है। मनोचिकित्सक इस मामले में मेरी कोई मदद नहीं कर सकता। अधिक से अधिक वह मुझे अजूबे केस की तरह मनोविज्ञान में दर्ज करा देगा लेकिन उससे मेरी मुश्किल खत्म नहीं होगी। मेरा इलाज केवल उसी के पास है... उसी हरी आँखोंवाले आदमी के पास...

इस नतीजे पर पहुँच कर मैं घर की छत पर चला आया ताकि वह आए तो मुझे दिख जाए। समय जैसे-जैसे बीतता गया, मेरी बेचैनी भी बढ़ती गई। यदि वह नहीं आया तो! एक कँपकँपी मेरे शरीर में दौड़ गई। तो क्या अब मुझे कुछ खाली स्थानों के साथ जीना होगा? यदि बहुत तलाशूँ तो मुझे उन शब्दों के विकल्प मिल सकते हैं। लेकिन कोई शब्द क्या किसी दूसरे शब्द का माकूल विकल्प हो सकता है? वह केवल काम-चलाऊ विकल्प हो सकता है। तो क्या मुझे काम-चलाऊ विकल्प के साथ बची जिंदगी को निपटाना होगा? बार-बार इसी तरह के प्रश्नों के जँगले में मैं कैद हो जाता, जिसके भीतर सिवाय छटपटाने और अपने मुक्तिदाता का इंतजार करने के, मेरे पास कोई दूसरा रास्ता नहीं था। उसका इंतजार करते हुए मैंने आज ऑफिस से छुट्टी ले ली।

एक के बाद एक सात दिन आशंकाओं, बेचैनियों और प्रश्नों में डूबते-उतराते गुजर गए। सातों दिन मैं सुबह से दोपहर तक छत में व्यग्रता से टहलते हुए उसका इंतजार करता और हताश हो कर लौट आता। एक दिन मैंने उस गली को भी खँगाला जहाँ महीने भर पहले वह गायब हो गया था। लेकिन उसका कुछ पता न चला।

मृतात्माएँ जैसे बेचैन टहलती हैं

अधेड़ वेश्याएँ जैसे करती हैं ग्राहकों का इंतजार

किसान जैसे बादलों के भीतर छिपे जल को झाँक लेना चाहते हैं

मजदूर जैसे पगार की तारीख की ओर दौड़ते हैं

धनी-मानी जैसे गोलियाँ खा कर नींद को मनाते हैं

मैं ऐसे ही उसकी बाट जोह रहा था और वह चुनी हुई सरकार की तरह किसी अदृश्य संसद के गलियारे में छिप गया था। मुझे यकीन हो चला था कि वह तब तक नहीं दिखाई पड़ेगा जब तक कि वह खुद न चाहे।

आखिरकार दस दिन बाद, शायद उसने ऐसा चाहा हो, वह मुझे पीछेवाली मुख्य सड़क के एक घर से निकलते हुए दिखा। उसका दिखना था कि भय और खुशी के मिले-जुले रंग वाले एक सर्वथा अपरिचित भाव ने मुझ पर हमला कर दिया। उसके हमले के जवाब में मैं तेजी से नीचे की ओर भागा और उसके पीछे हो लिया। वह मुझसे लगभग डेढ़ सौ मीटर की दूरी पर था। मुझे उसकी पीठ पर लदा हुआ टाट का बोरा दिखाई पड़ रहा था। उसके कदम सधे हुए एक निश्चित गति से आगे बढ़ रहे थे और मैं तेजी से उसके पास पहुँच रहा था। अब वह मुझसे कोई दस हाथ की दूरी पर था।

कुछ दूर मैं उसके पीछे-पीछे चलता रहा, फिर तेजी से आगे बढ़ कर उसके कंधे पर हाथ रख दिया। वह रुका और मैं भी। उसने इत्मीनान से मुड़ कर देखा मानो मेरा ही इंतजार कर रहा था। उसकी मुस्कराहट वैसी ही थी, हल्की-हल्की और रहस्यात्मक। न मालूम उसके चेहरे में ऐसा क्या था कि मैं सकपका गया और अपना हाथ हटा लिया। वह कुछ पलों के लिए मुझे यूँ ही देखता रहा और मैं किसी चोर की तरह नजर झुकाए उसके सामने खड़ा रहा। वह फिर आगे बढ़ गया, उसी गति और उसी निश्चिंतता के साथ। मैं उसे अपने से दूर जाते हुए देखता रहा, फिर अचानक जैसे सम्मोहन टूटा। मैं फिर दौड़ता हुआ अबिक बार उसके सामने खड़ा हो गया।

'कहिए...,' निहायत शालीन आवाज में उसने पूछा। उसकी शालीन आवाज में अनेकों छिपे हुए अर्थ की घंटियाँ बज उठी थीं।

'आपने... मेरे साथ... क्या किया है...?' मैंने अटक-अटक कर पूछा।

जवाब में वह अधिक अर्थपूर्ण ढंग से म्स्कराया - 'क्या किया है?'

'यही तो मैं जानना चाहता हूँ... आपने मेरे साथ किया क्या है?'

वह खड़ा रहा। उसकी आँखें मुझे फिर बाँधने लगीं। मेरी चेतना ने हालाँकि इसकी पुरजोर खिलाफत की लेकिन मैं बँधता चला गया। हरे रंग की अदृश्य रस्सियों ने मुझे बाँध लिया था और सवाल मेरे चेहरे से गायब हो गया था।

वह मेरे बगल से मुस्कराते हुए चुपचाप निकल गया। मैं फिर होश में आया और अबिक बार उसे रोकने के बजाय उसके पीछे-पीछे चलने लगा। पहले चौक, फिर बाईं गली और उसके बाद तीन सौ तेरह नंबर की विशाल कोठी। मैं चलता गया। मैं सम्मोहित भी था और मुक्त भी। होश मेरे कब्जे में था लेकिन जिज्ञासा उसे निर्देशित कर रही थी। वह कोठी में दाखिल हो गया और मैं भी, वह ऊपर चढ़ा और मैं भी, वह ऊपर के कमरे में प्रविष्ट हुआ और मैं भी... और... और यह क्या? बाहर से किसी को यकीन नहीं होगा कि उस कोठी के भीतर इतना बड़ा कमरा होगा, किसी इनडोर स्टेडियम की तरह। कमरे के बीच में एक मैदाननुमा जगह थी जिसमें तरह-तरह के फूल खिले हुए थे। कमरे के चारों ओर दीवार से लग कर कई खाने बने हुए थे। उसने फूलों के बीच प्यार से अपना बोरा रखा और वहीं बैठ गया। फिर बिना मेरी ओर देखे ऊँचे स्वर में कहा - 'आओ, यहाँ आ जाओ।'

मैं जा कर उसके पास बैठ गया।

थोड़ी देर बाद वह उठा मानो बहुत थक गया हो। उसने अपना बोरा खोला और चीजें निकाल कर खानों में रखने लगा। बोरे में शब्द भरे हुए थे। खानों के बाहर, मैंने देखा, वर्णमाला के अक्षर लिखे हुए थे। वह बोरे से शब्द निकालता और निश्चित खानों में रखता जाता। मैं बहुत गौर से उसे देख रहा था। उसके चेहरे पर अब रहस्य नहीं था बल्कि दर्द था। ठीक वैसा ही दर्द, जिसे पिछले दस दिनों से मैं अपने भीतर महसूस कर रहा था।

'तो आप शब्द-चोर हैं।'

उसने कुछ नहीं कहा। उसके चेहरे पर लेकिन दर्द की लकीरें अधिक गाढ़ी हो गई थीं। वह अपना काम करता रहा।

'आपने ही मेरे शब्दों को चुराया है, है न ?'

थोड़ी देर के लिए वह रुका, फिर मेरे चेहरे को बेध देनेवाली दृष्टि से देखा - 'मैंने आपके शब्द नहीं चुराए, आपने खुद ही मुझे दिया।'

'मैंने दिया है...!'

'आप मुझे शब्द-चोर कह लें, शब्दों से प्यार करनेवाला या फिर उनकी चिंता करने वाला, मुझे कोई फर्क नहीं पड़ता। मैं तो अपना काम ईमानदारी से कर रहा हूँ।'

'कौन-सा काम?'

'यही कि जिनको अपनी भाषा के शब्दों की जरूरत नहीं होती मैं उनसे उन शब्दों को छीन लेता हूँ... मेरे पास ऐसी शक्ति है... आप रहिए दूसरी भाषा के शब्दों के साथ...'

'लेकिन आपको यह अधिकार किसने दिया है...?' थोड़ी नाराजगी के साथ मैंने पूछा।

'उसी लोकतंत्र ने, उसी न्याय-व्यवस्था ने, उसी अधिकार-संपन्नता का मखौल उड़ानेवाली निर्लज्जता ने और उन करोड़ों-करोड़ लोगों ने, जिनकी दृढ़ जुबान को कुचलते हुए आप लोग भाषा के खिलाफ एक अघोषित दमनात्मक कार्रवाई में लिप्त हैं। मैं उनके लिए आप जैसे संभ्रांत लोगों की भाषा से शब्दों को हथिया लेता हूँ। वैसे भी आप लोगों को इन शब्दों की जरूरत तो है नहीं, फिर चिंता किस बात की?'

भाषा... मुझे याद आया, यह तो उस हरी बूँद के नीचे छिपा हुआ शब्द है जो मुझसे छीन लिया गया था।

'चिकत मत होइए, इस कमरे के भीतर आप अपने खोए हुए शब्दों का इस्तेमाल कर सकते हैं, लेकिन इसके बाहर नहीं,' उसने बेरुखी से जवाब दिया।

'मैं लेखक हूँ। शब्दों की जरूरत मुझे हमेशा पड़ती है और दूसरों से कुछ ज्यादा ही पड़ती है। आप मेरे शब्दों को चुरा कर मुझे खाली स्थान नहीं दे सकते। आप मेरे साथ ऐसा नहीं कर सकते।' मैं रूँआसा हो गया था।

'मैंने पहले ही कहा कि मैंने आपके शब्द नहीं चुराए, आपने खुद ही मुझे दे दिए थे। मेरे सामने कोई अगर अपनी संभ्रांतता के प्रदर्शन के लिए वर्चस्वशाली भाषा के शब्दों का इस्तेमाल करता है तो मूल शब्द अपने आप मेरे बोरे में आ जाता है। मैं उन शब्दों को यहाँ सहेज कर रखता हूँ... फूलों की खुशबू, हवा, रोशनी और तमाम दूसरे छिटकते जा रहे शब्दों की सोहबत में। यहाँ इन शब्दों को सम्मान मिलता है, आपकी दुनिया की तरह उन्हें दुरदुराया नहीं जाता।'

'इसका मतलब भाषा के प्रति आपका नजरिया शुद्धतावादी किस्म का है। क्या किसी भी भाषा को शुद्धता के आग्रह के साथ बचाया जा सकता है?'

'कहने को आप इसे मेरा शुद्धतावाद कह सकते हैं,' थोड़ी तल्खी के साथ उसने कहा, 'लेकिन यह शुद्धतावाद नहीं है। भाषा जरूरत के हिसाब से शब्द ग्रहण करती है। मिलावट या मिश्रण का भी एक तर्क होता है। लेकिन मिलावट जहाँ वर्चस्व की कोशिश या घोषणा के रूप में हो रही हो, उससे मेरा विरोध है। नए शब्दों को लेना अच्छी बात है, लेकिन अपने शब्दों को छोड़ देना कैसे अच्छी बात हो सकती है? जिन

शब्दों का इस्तेमाल आप लोगों ने शुरू कर दिया है, सोच कर देखिए, क्या वे शब्द आपकी भाषा में घुल-मिल गए हैं? और फिर क्या आपकी भाषा में वे शब्द नहीं हैं?'

'लेकिन इससे घाटा तो उन्हीं लोगों का हो रहा है, उन्हीं करोड़ों-करोड़ लोगों का, जिनके कथित हित की चिंता करते हुए आप अपनी इस कथित ईमानदारी के काम में लगे हैं।'

'यह तात्कालिक घाटा है, जो दीर्घकालिक लाभ का एक छोटा-सा हिस्सा है। जो सिब्जियाँ उगाते हैं, अन्न पैदा करते हैं वे आपस में मिल कर एक नया व्यवहार बना लेंगे। फिर वे अपना सामान न भी बेच पाएँ तो कम से कम उन्हें खा कर जिंदा तो रह सकेंगे। लेकिन आप तमाम लोग कैसे बचेंगे? जो श्रम की भाषा है उसका इस्तेमाल करनेवाले लोग तो बच ही जाएँगे लेकिन आप लोग? आपका काम कैसे चलेगा? आप कौन-सी भाषा में अपनी जीने लायक चीजें माँगेंगे?'

उसने जलती हुई लकड़ी से मुझे दाग दिया था। मेरे पास उसका कोई जवाब नहीं था। अचानक लगा जैसे किसी ने सरे बाजार मुझे नंगा कर दिया है। मेरी अर्जित संपित को एक झटके से हथिया लिया हो। कुछ शब्दों का हथियाना मुझे भयंकर जान पड़ रहा था। यदि इस भाषा के सारे शब्द छीन लिए जाएँ तो?' मैं घबरा गया और गिड़गिड़ाने लगा - 'आप मुझे मेरे शब्द वापस कर दीजिए। असावधानीवश मैंने इन्हें खो दिया है लेकिन अब ऐसी स्थिति नहीं आने दूँगा। यकीन जानिए, पिछले दस दिनों से शब्दों को खो देने की जो यातना मैंने झेली है उसका बयान नहीं कर सकता। आप मुझ पर यकीन कीजिए और मेरे शब्द वापस कर दीजिए।'

'मैं आपकी तकलीफ जानता हूँ लेकिन अब मैं कुछ नहीं कर सकता।' उसने दो टूक जवाब दे दिया था।

'नहीं, आप सबकुछ कर सकते हैं। आप मुझे मेरे शब्द लौटा सकते हैं। आप मेरे शब्द लौटा दीजिए... लौटा दीजिए...' मैं बेतरह गिड़गिड़ाने लगा।

'ठीक है, कुछ सोच कर और मेरी तकलीफ जान कर उसने कहा, 'आप ले जाइए अपने शब्द, वे यहीं पर हैं। लेकिन इसे अपने तक ही रखिएगा।'

'लेकिन मुझे कैसे पता चलेगा कि कौन-से शब्द मैंने खो दिए हैं? आपने तो उनकी स्मृतियों को भी हड़प लिया है।' मैं परेशान था। 'देखिए, मैंने कोई व्यक्तिगत आँकड़ा नहीं रखा है। यदि आप अपने खोए हुए शब्दों को याद कर सकते हैं तो याद कीजिए और उन्हें ले जाइए। आप चूँकि लेखक हैं इसलिए मैंने आपको यह सुविधा दी। इससे अधिक मैं आपकी मदद नहीं कर सकता।'

उसने जो सुविधा मुझे दी थी, मैं उसकी उम्मीद नहीं कर सकता था। मैंने इस सुविधा की अंतिम बूँद तक का इस्तेमाल करने की ठान ली और अपनी स्मृति पर जोर डाल कर उन वाक्यों को याद करने लगा जिनके बीच मुझे खाली स्थान मिले थे... यही तो तुम लोगों और हममें ... अंतर... है, हाँ ठीक... अंतर, वैद्य साहब ने अपने बीवी-बच्चों को ...जहर... दे दिया था... हाँ यही शब्द था... जहर, भाषा तो मुझे याद आ ही चुका है। मैं उपनी स्मृति पर और जोर डालने लगा, इतना कि उसके कुचले जाने का खतरा बढ़ गया था, लेकिन मुझे और कुछ भी याद नहीं आया। आखिरकार हार कर मैंने कहा - 'जो शब्द आपने छीने हैं उनमें से तीन शब्द मुझे याद आ गए हैं... अंतर, जहर और भाषा, फिलहाल आप मुझे यही तीन शब्द दे दीजिए।' वह हल्के से मुस्कराया और उसने तीनों शब्द वापस कर दिए।

'क्या मैं कमरे से बाहर जा कर उन्हें जाँच लूँ?'

वह फिर मुस्कराया। इस बार थोड़ा ज्यादा। उसकी मुस्कराहट में स्वीकृति की रेखाएँ भी थीं। मैं कमरे से बाहर आया और मन में उन शब्दों को दोहराया - अंतर... जहर... भाषा...। मैं इन शब्दों को पूरी ताकत के साथ उच्चारना चाहता था लेकिन जैसे-तैसे अपने आपको रोका। क्या पता वह मेरी हरकत से नाराज हो जाए और अपना इरादा बदल दे। मैं कमरे के भीतर आ गया। मेरी आँखों में धन्यवाद के भाव थे जो जुबान पर आ गए थे - 'आपका बहुत-बहुत धन्यवाद।' जवाब में वह पहले की ही तरह मुस्कराया लेकिन उसकी मुस्कराहट में अब रहस्य नहीं था।

उसकी मुस्कराहट मुझे प्रोत्साहित कर रही थी। मैंने फिर याचना की - 'यदि मुझे दूसरे खोए हुए शब्दों का पता चल जाए तो क्या मैं उन्हें भी वापस ले सकता हूँ... अभी नहीं, बाद में... जब कभी मुझे पता चलेगा...।' यह मेरा लालच नहीं था... जरूरत थी, इसे वह भी समझ रहा था। उसने हामी भर दी।

मैं चहकता हुआ कोठी से बाहर निकला। बिल्कुल मस्त। रास्ते में एक अधेड़ आदमी को रोक कर मैंने पूछा - 'क्या आप जानते हैं कि बिल्ली और कुत्ते में क्या अंतर होता है?' वह अजीब नजरों से घूरता हुआ बगैर जवाब दिए आगे बढ़ गया। लेकिन मैं खुश था। फिर एक बच्चे से पूछा - 'अच्छा बताओ बेटे, तुम कौन-कौन-सी भाषा जानते हो?'

'हिंदी, इंग्लिश, मराठी...' लेकिन मुझे जवाब सुनने की फुरसत कहाँ थी। मैं आगे बढ़ गया। पीछे से उसने चिल्ला कर कहा - 'और अंकल... गुजराती भी...।' चलते हुए मैंने एक किशोर को हिदायत दी - 'धतूरे के बीज में जहर होता है... जहर... जहर, समझे... उससे दूर रहना...।' अचकचा कर उसने कहा - '...जी अंकल...' और आगे बढ़ गया।

शब्दों से बड़ा सुख कोई नहीं है, यह मैं आज जान पाया था। हालाँकि बतौर लेखक उसका इस्तेमाल बरसों से कर रहा था। मुझे आज उसकी वास्तविक ताकत का अंदाजा हुआ था। मन ही मन मैंने उस व्यक्ति को धन्यवाद दिया। लेकिन उसका नाम क्याँ था... कौन था वह... नाम तो कम से कम पूछ ही लेना था... क्या उसका कोई नाम होगा भी...? क्या वह किसी खास ---- दल से संबंधित है? इस वाक्य में म्झे एक खाली स्थान नजर आया। यदि यह आज से पहले का कोई दिन होता तो मैं बेचैन हो जाता लेकिन अभी तो खुश हो गया क्योंकि मैं एक और खोए ह्ए शब्द को पा सकता था। मैं बमुश्किल उस कोठी से पाँच सौ मीटर की दूरी पर था, सो उस खाली स्थान को गुनते-गुनते तेजी से वापस भागा। वहीं मुहल्ला... वहीं गली... लेकिन वहाँ तीन सौ तेरह क्रमोंक की कोई कोठी ही नहीं था। जिस जगह उसके होने का मुझे अंदाजा था वहाँ कोई दूसरी ही कोठी थी। मैंने लोहे का दरवाजा खटखटाया तो अंदर से एक पारसी बूढ़ा, जो चश्मा चढ़ाए हुए था, मेरे सामने खड़ा हो गया। उससे पूछना बेकार था कि मैं किसे ढूँढ़ रहा हूँ। मैंने उस मुहल्ले को अच्छी तरह से छान मारा लेकिन कोठी नहीं मिलीं। पूछने पर पता चला कि तीन सौ तेरह क्रमांक की कोठी तो उस मुहल्ले में है ही नहीं। मैं समझ गया कि उसके बारे में अधिक पूछताछ करना बेकार है इसलिए चुपचाप अपने खाली स्थान को लिए लौट आया। भविष्य में न मालूम कितने खाली स्थान फफोले की तरह मेरी चेतना मे उग आएँगे।

मैं काम पर जाने के पहले अब भी उस गली को झाँक कर देख लेता हूँ कि शायद वह कोठी मिल जाए। सुबह-सुबह अपने मुहल्ले का चक्कर लगाता हूँ। दूसरी जगहों में भी उसे तलाशता हूँ। लेकिन मुझे अब तक वह कहीं नहीं दिखाई पड़ा है।